National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2024; 1(55): 220-223
© 2024 NJHSR
www.sanskritarticle.com

प्रो. गणेश बी. पवार
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय,
कलबुरगी

Correspondence:
प्रो. गणेश बी. पवार
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय,
कलबुरगी

सिद्धेश्वर स्वामी जी : प्रकाश का पथ

प्रो. गणेश बी. पवार

बीजापुर — एक ऐसा नगर, जिसकी मिट्टी में इतिहास की गूँज और भक्ति की सुगंध दोनों एक साथ घुली हुई हैं। दक्कन के पठार पर बसा यह नगर कभी आदिलशाही सल्तनत की राजधानी रहा, जहाँ स्थापत्य कला ने अपनी पराकाष्ठा को छुआ। गोलगुंबज की गूँजती दीवारें, अली आदिल शाह का दरबार, और मस्जिदों-मकबरों की नक्काशी आज भी बीते वैभव का प्रमाण देती हैं।

परंतु बीजापुर केवल स्थापत्य और इतिहास का शहर नहीं है; यह संतों, सूफियों और आध्यात्मिक महापुरुषों की धरती भी है। यहाँ के आकाश में एक साथ अजान की पुकार और भजनों की मधुर ध्वनि गूँजती है। सूफी दरगाहों में मोहब्बत की खुशबू है, तो मंदिरों में भक्ति का दीपक जलता रहता है।

सदियों से यह नगर भिन्न-भिन्न धर्मों, भाषाओं और संस्कृतियों का संगम स्थल रहा है। यहाँ मराठी, कन्नड़, हिंदी और उर्दू – सब बोलियाँ एक ही गली में सुनाई देती हैं। लोग कहते हैं कि बीजापुर की हवा में ही एक अद्भुत अपनापन है – यहाँ कोई पराया नहीं होता।

इसी पवित्र और विविधता से भरे वातावरण में, समय की धारा में एक दिन ऐसा भी आया जब इस भूमि पर एक नया सूरज उगा — **सिद्धेश्वर स्वामी जी**। उनका आगमन मानो किसी सूखे बाग़ में पहली वर्षा की बूंदों जैसा था, जिसने न केवल बीजापुर, बल्कि पूरे कर्नाटक के लोगों के हृदय को भक्ति, सेवा और मानवता के अमृत से सींच दिया। जिस प्रकार वसंत ऋतु आने पर बंजर ज़मीन भी हरियाली से भर उठती है, वैसे ही स्वामी जी के प्रवचनों और कर्मों ने यहाँ के समाज को नई चेतना दी। उनके आने से शहर का आध्यात्मिक वातावरण और भी गहन हो गया – जैसे किसी मंदिर की आरती में अचानक सौ दीपक और जुड़ जाएँ।

सिद्धेश्वर स्वामी जी का जन्म बीजापुर ज़िले के एक साधारण, धार्मिक प्रवृत्ति वाले परिवार में हुआ। घर की दीवारें भले ही मिट्टी और खपरैल की थीं, लेकिन वातावरण में भक्ति, ईमानदारी और सेवा की महक बसी थी। उनके पिता ईश्वर-भक्त, परिश्रमी और सहज स्वभाव के थे, जबकि माता सादगी और करुणा की मूर्ति थीं। माँ की गोद में सुनाई जाने वाली रामकथा और हर सुबह बजने वाली मंदिर की घंटियों ने उनके कोमल मन में भक्ति के पहले बीज बो दिए।

बाल्यकाल से ही उनमें कुछ विशेष था — साथियों के साथ खेलते हुए भी अचानक मंदिर की सीढ़ियों पर जाकर बैठ जाना, गायों को सहलाना, या बूढ़ी अम्माओं से आशीर्वाद लेना उनकी स्वाभाविक आदत थी। गाँव के लोग अक्सर कहते — "यह बच्चा कुछ अलग है... इसके मन में भगवान पहले से ही बस गए हैं।"

एक दिन का प्रसंग बड़ा प्रसिद्ध है। स्वामी जी उस समय लगभग दस वर्ष के रहे होंगे। गाँव के मंदिर में रथोत्सव हो रहा था। मेला, झूलों, मिठाई की दुकानों और शोर-गुल के बीच, वे अकेले मंदिर के गर्भगृह में बैठकर मूर्ति की आँखों में निहारते रहे। पुजारी ने हँसकर पूछा –
"बेटा, बाहर क्यों नहीं जाते? दोस्तों के साथ खेलो।"

बालक ने मासूमियत से उत्तर दिया – "बाहर की दुनिया में शोर है, यहाँ शांति है... मुझे यही अच्छा लगता है।"

पुजारी ने आश्चर्य और स्नेह से उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा – "तुम्हारे भीतर का मंदिर बाहर से बड़ा है, इसे सदा संजोकर रखना।"

किशोरावस्था में उनके भीतर का यह भक्ति-बीज और गहरा हो गया। वे गाँव-गाँव होने वाले सत्संगों में जाने लगे, संतों और विद्वानों की बातें ध्यान से सुनते, और प्रश्न पूछते जो उम्र से कहीं आगे की समझ दिखाते।

एक बार एक यात्री संत ने गाँव में प्रवचन दिया – "जीवन का सार सेवा और त्याग में है; जो अपने लिए जीता है, वह मर जाता है, और जो दूसरों के लिए जीता है, वह अमर हो जाता है।"

ये वाक्य उनके हृदय पर ऐसे अंकित हो गए मानो पत्थर पर लकीर।

युवावस्था में उन्होंने गुरु की तलाश शुरू की। वर्षों की खोज और प्रार्थना के बाद उन्हें एक महान संत का सान्निध्य मिला, जिन्होंने उन्हें दीक्षा दी और साधना-पथ का मार्ग दिखाया।

गुरु ने कहा – "बेटा, तपस्या केवल जंगल में बैठकर नहीं होती, वह लोगों के बीच रहकर, उनके दुख बाँटकर होती है।"

यह वाक्य सिद्धेश्वर स्वामी जी के जीवन-दर्शन का आधार बन गया। दीक्षा लेने के बाद उनका जीवन एक तपस्वी की तरह अनुशासनमय हो गया — प्रातः सूर्योदय से पहले उठना, ध्यान, मंत्र-जप, और दिन का अधिकांश समय सेवा में बिताना। उनकी आँखों में गहरी शांति और वाणी में एक अद्भुत अपनापन आने लगा, जिसे सुनने मात्र से ही लोग अपने दुख भूल जाते थे।

यही वह समय था जब साधारण बालक **सिद्धेश्वर** ने धीरे-धीरे स्वयं को **संत सिद्धेश्वर स्वामी जी** में रूपांतरित करना शुरू किया — एक ऐसे मार्गदर्शक, जिनकी यात्रा अब पूरे समाज के लिए प्रकाशपथ बनने वाली थी।

सिद्धेश्वर स्वामी जी का व्यक्तित्व किसी विशाल वटवृक्ष जैसा था — नीचे छाया, चारों ओर हरियाली, और जड़ों में अडिग स्थिरता। उनके भीतर तीन गुण स्वाभाविक रूप से बसे थे — **विनम्रता**, **करुणा**, और **त्याग**। वे कभी ऊँची कुर्सी या सिंहासन पर नहीं बैठते थे; चाहे राजा मिले या रिक्शाचालक, सबको एक ही स्तर पर बिठाते और हाथ जोड़कर अभिवादन करते।

उनका रहन-सहन अद्भुत रूप से सादा था। आश्रम में उनका कमरा छोटा-सा था, जिसमें एक लकड़ी की खटिया, एक अलमारी, और एक दीपक। वस्त्र के नाम पर साधारण धोती और कंधे पर सफेद चादर। कोई भव्य भोजन नहीं — बस जो भी भिक्षा में मिल जाए, वही प्रसाद मानकर ग्रहण करते। वे कहते थे — "भोजन का स्वाद मसालों में नहीं, संतोष में है।"

उनकी दिनचर्या लोहे की तरह अनुशासित थी। भोर होने से पहले उठना, स्नान के बाद ध्यान और भजन में समय बिताना, फिर आश्रम के आँगन में बैठकर लोगों से मिलना।

दोपहर में गरीबों के बीच अन्न वितरण, शाम को प्रवचन, और रात को फिर से ध्यान।

कभी-कभी वे स्वयं झाड़ू उठाकर आश्रम के प्रांगण को साफ करते। जब किसी ने कहा - "गुरुदेव, यह कार्य तो सेवक कर देंगे," तो वे मुस्कुरा कर बोले – "सेवा का स्वाद स्वयं चखो, तभी उसका मूल्य समझ पाओगे।"

एक बार की घटना तो आज भी बीजापुर में लोग याद करते हैं। एक बरसात की रात, आश्रम में पानी भर गया। भक्तों ने सोचा, सुबह तक इंतज़ार करेंगे। पर स्वामी जी ने तुरंत अपने कंधे पर बाल्टी उठाई और पानी बाहर निकालने लगे। भक्तों ने हैरानी से पूछा, "आप यह काम क्यों कर रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया – "आश्रम मेरा घर है, और घर के काम में मालिक भी मज़दूर होता है।"

उनका आदर्श हमेशा यही था — “संसार में रहकर भी संसार से ऊपर रहो।”

वे कहते थे – "जैसे कमल का फूल पानी में खिलता है पर पानी उसे भिगो नहीं पाता, वैसे ही जीवन जियो। भीड़ में रहो, पर भीड़ में खो मत जाओ।"

उनकी करुणा की सीमा इतनी थी कि वे किसी भी जरूरतमंद को मना नहीं करते।

एक बार एक गरीब महिला अपने बीमार बेटे को लेकर आश्रम आई और दवा के लिए पैसे माँगे। स्वामी जी के पास उस समय एक भक्त ने भेंट स्वरूप दी हुई नयी चादर थी।

उन्होंने चादर बेचकर पैसा दिया और बोले – "चादर मुझे गर्मी देगी, पर दवा तुम्हारे बेटे को जीवन देगी।"

ऐसी अनेक घटनाएँ उनके जीवन में भरी पड़ी हैं, जो बताती हैं कि उनका त्याग केवल शब्दों में नहीं, बल्कि हर कर्म में था। उनका हर दिन, हर क्षण, दूसरों के सुख के लिए समर्पित था — और शायद यही कारण है कि आज भी लोग उन्हें केवल संत नहीं, बल्कि **“चलते-फिरते प्रेम और सेवा का रूप”** कहते हैं।

सिद्धेश्वर स्वामी जी के प्रवचन किसी गूढ़ ग्रंथ की तरह भारी-भरकम नहीं होते थे, बल्कि जैसे माँ अपने बच्चे को कहानी सुनाते हुए जीवन के सत्य समझाती है — सहज, मधुर और गहरे।

उनकी आवाज़ में एक ऐसी मिठास थी, जो सुनने वाले के मन का सारा तनाव पिघला देती थी।

शब्द सरल होते, लेकिन उनमें जीवन का गहरा दर्शन छिपा रहता।

उनकी एक खासियत थी — वे हमेशा **तीनों भाषाओं** का मिलाजुला प्रयोग करते — कन्नड़, मराठी और हिंदी। वे कहते – "भाषा तो बस द्वार है, प्रेम ही असली चाबी है।"

इसलिए चाहे किसान हो या प्रोफ़ेसर, बच्चा हो या बुजुर्ग — हर कोई उनसे जुड़ जाता।

उनके प्रवचनों में कहानियाँ बहुत होतीं — छोटी-छोटी, लेकिन असरदार।

एक बार उन्होंने एक सभा में कहा – "एक किसान रोज़ अपने खेत में पानी देता था। एक दिन आलस आया और पानी नहीं दिया। अगले

दिन पौधे मुरझा गए। ऐसे ही, अगर रोज़ अपने मन को प्रेम और सत्य से सींचो नहीं, तो वह मुरझा जाएगा।" सभा में बैठे लोग देर तक यह सोचते रहे कि वे अपने "मन के पौधे" को कैसे हरा-भरा रखें।

उनके प्रवचनों का असर इतना था कि कई बार लोग रोने लगते। एक घटना यादगार है — एक व्यापारी, जो लालच और कर्ज में डूबा था, संयोग से स्वामी जी का प्रवचन सुनने आया। स्वामी जी ने बिना नाम लिए कहा – "धन समुद्र का पानी है, जितना पीओगे, प्यास उतनी ही बढ़ेगी। सच्ची तृप्ति सेवा में है, संग्रह में नहीं।" वह व्यापारी प्रवचन के बाद उनके पास आया, आँसू भरी आँखों से बोला – "गुरुदेव, आज मैंने जीवन का पहला सच्चा सौदा किया है — लोभ को छोड़ने का।"

स्वामी जी के कुछ प्रसिद्ध कथन आज भी बीजापुर की गलियों में गूँजते हैं —

1. "दीपक अकेला जलता है, लेकिन अंधेरा सबका मिटा देता है — ऐसे ही बनो।"
2. "गर्व की दीवार जितनी ऊँची होगी, प्रेम की धूप उतनी कम पहुँचेगी।"
3. "सेवा के रास्ते पर चलने के लिए जूते की नहीं, दया की ज़रूरत होती है।"
4. "जिसे तुम सबसे छोटा समझते हो, वही तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा शिक्षक हो सकता है।"

वे कभी केवल उपदेश नहीं देते थे, बल्कि जीवन का चित्र खींचते थे। उनकी सभा में बैठे लोग प्रवचन के अंत में केवल सुनकर नहीं, बल्कि बदलकर उठते थे।

जैसे कोई भीतर का आईना साफ हो गया हो।

श्रोताओं का कहना था — "स्वामी जी का प्रवचन केवल कानों से नहीं, आत्मा से सुना जाता था।"

सिद्धेश्वर स्वामी जी का जीवन केवल ध्यान और प्रवचन तक सीमित नहीं था, बल्कि वह समाज की पीड़ा को अपने हृदय में महसूस करने वाले संवेदनशील संत थे। उनके लिए आध्यात्मिकता का असली अर्थ था — **दुखियों के आँसू पोंछना और हर जीव में ईश्वर को देखना**। स्वामी जी का मानना था कि "भूखा पेट और अशिक्षित मन में भगवान बस नहीं सकते"। इसीलिए उन्होंने अपने आश्रम के द्वार सदैव गरीबों और जरूरतमंदों के लिए खुले रखे।

- ठंडी रातों में उन्होंने अपने स्वयं के कम्बल उतारकर किसी राहगीर को ओढ़ा दिए।
- कई बार वे प्रवचन के दौरान मिले दक्षिणा को तुरंत किसी गरीब विधवा के हाथ में रख देते।

स्वामी जी स्वयं दवाइयाँ लेकर गाँव-गाँव जाते। एक बार बरसात में गाँव के रास्ते पूरी तरह कीचड़ से भर गए थे, फिर भी उन्होंने एक बीजापुर और आसपास के गाँवों में जब भी कोई महामारी फैलती, बीमार बच्चे को कंधे पर उठाकर अस्पताल तक पहुँचाया।

स्वामी जी ने यह देखा कि कई बच्चे गरीबी के कारण पढ़ाई छोड़ देते हैं। उन्होंने आश्रम में एक निःशुल्क शिक्षा केंद्र शुरू किया, जहाँ बच्चों को न केवल पढ़ाया जाता, बल्कि उन्हें किताबें, यूनिफॉर्म और भोजन भी दिया जाता। उनका कहना था — "ज्ञान ही वह दीपक है जो अंधकार मिटाता है"।

उन्होंने वृक्षारोपण को धार्मिक कार्य मानते हुए, हर त्योहार पर भक्तों से एक पौधा लगाने का आग्रह किया। नशामुक्ति के लिए उन्होंने गाँव-गाँव जाकर युवाओं से सीधे संवाद किया, और शराब छोड़ने की प्रेरणा दी। एक बार एक शराबी ने प्रवचन के दौरान ही बोतल तोड़कर स्वामी जी के चरणों में रख दी — यह उनके प्रभाव का प्रमाण था।

स्वामी जी ने अपने आश्रम और मंदिर को केवल पूजा-पाठ की जगह न रहने देकर, उसे समाज सेवा का केंद्र बना दिया। यहाँ रक्तदान शिविर, स्वास्थ्य जाँच कैंप, महिला सशक्तिकरण कार्यशालाएँ और किसानों के लिए कृषि-प्रशिक्षण कार्यक्रम होते।

उनकी हर गतिविधि का संदेश स्पष्ट था — "भगवान की सबसे सच्ची आराधना है, उनके बनाए हर जीव की सेवा।"

सिद्धेश्वर स्वामी जी का आश्रम केवल एक धार्मिक केंद्र नहीं था, बल्कि वह ऐसा स्थान था जहाँ हर कोई अपनी थकान उतारकर, मन की उलझनों को सुलझाकर, एक नई ऊर्जा के साथ लौटता था। उनकी सरल, अपनत्व भरी दृष्टि और मधुर मुस्कान लोगों को ऐसा एहसास देती मानो वे अपने घर के बुज़ुर्ग से मिल रहे हों।

भक्त बताते हैं कि स्वामी जी से मिलने के लिए किसी औपचारिकता की आवश्यकता नहीं थी—न कोई समय तय, न कोई आरक्षण। जो भी उनके द्वार आता, वह प्रेम और धैर्य के साथ सुना जाता। एक बार, एक गरीब किसान, फटे पुराने कपड़ों में, बरसात के दिन आश्रम पहुँचा। उसके पैरों में चप्पल भी नहीं थी, और हाथ में भीगता हुआ अन्न का एक छोटा-सा पोटला था। स्वामी जी ने देखा, तुरंत उठकर अपने कमरे से एक साफ़ तौलिया और गरम चाय लाकर दी। फिर बोले - "बेटा, धरती पर सबसे बड़ा देवालय भूखे पेट को रोटी देना है। तुम्हारे खेत में उगने वाला हर दाना भी ईश्वर का प्रसाद है।"

उस किसान की आँखें भर आईं—उसे यह एहसास हुआ कि यहाँ केवल धर्म की बातें नहीं होतीं, यहाँ धर्म को जीया जाता है। मेरी अपनी एक मुलाक़ात का संस्मरण आज भी हृदय में ताज़ा है। यह बीजापुर की एक ठंडी सुबह थी, मैं पहली बार उनके प्रवचन में शामिल होने गया था। मंच पर बैठते समय उन्होंने मुझसे पूछा - "आप कहाँ से आए हैं, बेटा?"

मैंने संकोच से उत्तर दिया—"कर्नाटक से, स्वामी जी।"

वे मुस्कुराए और बोले—"तो हम तो एक ही घर के हैं, फिर आप इतने दूर क्यों बैठे हैं? आइए, सामने बैठिए, बात साफ़ सुनाई देगी और दिल भी करीब रहेगा।"

प्रवचन के बीच वे अक्सर श्रोताओं से सीधे संवाद करते। एक बार उन्होंने पूछा— "अगर आपका पड़ोसी भूखा है और आप मंदिर में प्रसाद चढ़ा रहे हैं, तो क्या ईश्वर खुश होंगे?" पूरी सभा में सन्नाटा छा गया। फिर उन्होंने खुद उत्तर दिया— "पहले पड़ोसी को भोजन

कराइए, फिर ईश्वर को प्रसाद चढ़ाइए। क्योंकि भूख मिटाना ही सच्ची भक्ति है।"

कभी-कभी उनके प्रवचन में हल्का-सा हास्य भी होता, जिससे वातावरण में सहजता आ जाती। एक बार, किसी ने उनसे पूछा—"स्वामी जी, आपको गुस्सा नहीं आता?"

उन्होंने हँसते हुए कहा— "आता है बेटा, लेकिन मैं उसे चाय पिलाकर बैठा लेता हूँ, ताकि वह बाहर न भागे और दूसरों को चोट न पहुँचाए।"

संपूर्ण सभा ठहाकों से गूंज उठी, लेकिन सभी ने उनके शब्दों के पीछे की गहरी सीख भी समझी। ऐसे अनेक संवाद और क्षण सिद्धेश्वर स्वामी जी को केवल एक संत नहीं, बल्कि एक सच्चे जीवन-शिक्षक के रूप में स्थापित करते हैं। उनके साथ बिताया गया हर पल, जीवन की किताब का एक अमूल्य अध्याय बन जाता था।

सिद्धेश्वर स्वामी जी के जीवन के अंतिम दिन भी उतने ही शांत, संयमित और सेवा-भाव से भरे थे, जितना उनका पूरा जीवन। वृद्धावस्था और बीमारी की आहट आने के बाद भी उन्होंने अपनी दिनचर्या और प्रवचनों को यथासंभव जारी रखा। शरीर भले ही क्षीण हो चला था, पर उनकी वाणी और नेत्रों में वही तेज़ था।

कहते हैं, एक दिन सुबह उन्होंने अपने नज़दीकी शिष्यों को बुलाकर बड़ी सहजता से कहा—

"अब समय आ गया है, शरीर का साथ अब नहीं रहेगा, पर मैं तुम सबके भीतर हमेशा रहूँगा।"

उनके स्वर में न कोई डर था, न कोई मोह—बस एक शांत नदी की तरह प्रवाहित होने वाली आत्मीयता थी। उनके अंतिम प्रवचन का विषय भी वही था, जो उनके जीवन का सार था—**"सेवा ही सच्चा धर्म है"**। उन्होंने कहा था— "मंदिर केवल घंटा बजाने और दीप जलाने का स्थान नहीं है, यह भूखे को रोटी, दुखी को सांत्वना और अज्ञानी को ज्ञान देने का केंद्र होना चाहिए।"

जब उनके देहावसान का समाचार फैला, तो बीजापुर की गलियों में एक अजीब-सी ख़ामोशी छा गई। मंदिर की घंटियाँ धीमी हो गईं, दुकानों के शटर आधे झुक गए, और लोगों की आँखों में आँसू थे। कोई कह रहा था—"हमारे बाबा चले गए..." तो कोई चुपचाप उनकी तस्वीर के सामने दीप जलाकर बैठा था।

उनकी अंतिम यात्रा में शहर का हर वर्ग—अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान, युवा-बुज़ुर्ग—सब शामिल हुए। फूलों से सजा रथ जब गलियों से गुज़रा, तो छतों और खिड़कियों से लोग पुष्पवर्षा करने लगे। ऐसा लग रहा था जैसे पूरा शहर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि दे रहा हो।

आज भी स्वामी जी की विरासत जीवित है—

- उनके प्रवचनों की ऑडियो और वीडियो रिकॉर्डिंग्स भक्तों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।
- उनके लिखे छोटे-छोटे उपदेश आश्रम की दीवारों पर अंकित हैं, ताकि आने वाला हर व्यक्ति पढ़कर प्रेरित हो सके।
- उनके शिष्य और अनुयायी शिक्षा, नशामुक्ति, और सेवा के कामों को आगे बढ़ा रहे हैं।

सच तो यह है कि सिद्धेश्वर स्वामी जी का जाना केवल एक व्यक्ति का जाना नहीं था—यह एक युग का अवसान था। परंतु उनकी शिक्षाएँ, उनका जीवन-दर्शन और उनका प्रेम, समय और मृत्यु से परे, आज भी बीजापुर की हवा में महसूस किया जा सकता है।

सिद्धेश्वर स्वामी जी के जीवन को यदि एक प्रतीक में समेटना हो, तो वह एक **दीपक** होगा — जो अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के अंधकार को मिटाने के लिए जलता है। यह दीपक बीजापुर की गलियों से लेकर गाँवों के कोनों तक, असंख्य हृदयों में प्रकाश फैलाता रहा। स्वामी जी चले गए, पर वह लौ अब भी बुझी नहीं है — वह लौ उनके शब्दों में, उनके कार्यों में, और उनके द्वारा छुई हुई आत्माओं में आज भी जल रही है।

आज के समय में, जब जीवन की भागदौड़ में इंसान अपने भीतर के मौलिक गुण—सहानुभूति, करुणा, और सत्यनिष्ठा—से दूर होता जा रहा है, तब स्वामी जी की शिक्षाएँ पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक लगती हैं। उनका संदेश था कि आध्यात्मिकता कोई जटिल साधना नहीं, बल्कि रोज़मर्रा के जीवन में सच्चाई और सेवा को अपनाना है। वे कहते थे — "ईश्वर की खोज मंदिरों में नहीं, बल्कि उस मुस्कान में है जो आप किसी दुखी के चेहरे पर लाते हैं।"

कल्पना कीजिए — एक ठंडी सुबह है, बीजापुर का आसमान धुंध से ढका हुआ है, और किसी छोटे से घर में एक बच्चा अपने बुजुर्ग दादा से स्वामी जी के किस्से सुन रहा है। दादा बताते हैं कि कैसे स्वामी जी ने गाँव के कुएँ का पानी साफ करवाया था ताकि कोई बीमार न पड़े, या कैसे उन्होंने नशे में डूबे एक युवक को न केवल शराब छोड़ने के लिए प्रेरित किया, बल्कि उसे रोज़ काम और सम्मानजनक जीवन भी दिलाया। बच्चे की आँखों में चमक आ जाती है, और वह सोचता है—"मैं भी ऐसा ही इंसान बनूँगा।" यही तो अमर विरासत है।

स्वामी जी का जीवन हमें यह सिखाता है कि **संत चले जाते हैं, पर उनका दिया हुआ प्रकाश मानवता के पथ को रोशन करता रहता है।** उनका हर कार्य, हर वचन, हर मुस्कान एक बीज की तरह है, जो आज भी नए वृक्षों में बदल रहा है — वृक्ष जो छाया, फल, और जीवन देते हैं। और अंततः, उनकी स्मृति एक प्रेरणा बनकर हमारे भीतर यह विश्वास जगाती है कि दुनिया में अब भी अच्छाई जीवित है — बस हमें उसे आगे बढ़ाना है। जैसे उन्होंने कहा था —

"दीपक से दीपक जलता है,
प्रकाश का सिलसिला चलता है।
एक दिन यह जग रोशन होगा,
जब हर मन में सेवा का दीप जलेगा।"